दुनिया में पितृसत्ता का जन्म कैसे हुआ?

युवल नोआह हरारी

'सेपियन्स- अ ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ़ ह्यूमनकाइंड' से कुछ अंश

अनुवाद: आशुतोष भाकुनी

अलग-अलग समाज अपने सदस्यों के बीच श्रेष्ठता के अलग-अलग काल्पनिक क्रम गढ़ते हैं. आधुनिक अमरीकियों के लिए नस्ल बहुत महत्त्वपूर्ण है पर मध्यकालीन मुस्लिमों के लिए यह ज्यादा मायने नहीं रखती थी. मध्यकालीन भारत में जाति जीवन और मृत्यु का प्रश्न थी, जबकि आधुनिक यूरोप में यह लगभग अस्तित्व में नहीं है. मगर एक क्रम सभी मानवीय समाजों में सबसे महत्त्वपूर्ण रहा है- लिंग की श्रेष्ठता का क्रम. हर जगह लोगों ने खुद को स्त्री और पुरुष में विभाजित किया हुआ है. और लगभग सभी जगह पुरुष को लाभ मिला है, कम-से-कम कृषि क्रान्ति के बाद से.

कई समाजों में स्त्रियाँ पुरुषों की संपत्ति मात्र होती थीं, खासतौर से अपने पिता, पति या भाईयों की. बहुत सी कानूनी व्यवस्थाओं में बलात्कार 'संपत्ति के नुकसान' की श्रेणी में आता है- दूसरे शब्दों में कहें, पीड़ित वह महिला नहीं है जिसका बलात्कार हुआ है बल्कि वह पुरुष है जो उस स्त्री का मालिक है. ऐसे में, कानूनी उपाय था कि संपत्ति दूसरे को दे दी जाए- बलात्कारी को स्त्री के पिता या भाई को एक कीमत चुकानी पड़ती थी जिसके बाद वह स्त्री बलात्कारी की संपत्ति हो जाती थी.

एक ऐसी स्त्री का बलात्कार करना जो किसी भी पुरुष की संपत्ति नहीं थी, इसको अपराध ही नहीं माना जाता था, ठीक वैसे ही जैसे सड़क पर गिरे हुए सिक्के को उठा लेना चोरी नहीं माना जाता. और अगर कोई पुरुष अपनी पत्नी का ही

बलात्कार करे, तो यह भी कोई अपराध नहीं था. बल्कि अपनी ही पत्नी का बलात्कार करना तो विरोधास्पद बात थी. पति होना पत्नी के शरीर पर पूरा अधिकार पाना था. यह कहना कि पति ने पत्नी का ‘बलात्कार’ किया ठीक वैसे ही बेतुका था जैसे यह कहना कि एक आदमी ने अपने ही पैसे चुरा लिए हैं. ऐसी मानसिकता केवल प्राचीन एशिया और अफ्रीका तक ही सीमित नहीं थी. 2006 तक भी 53 देश ऐसे थे जहाँ पति को पत्नी के साथ बलात्कार करने पर सजा नहीं दी जा सकती थी (भारत में आज भी ऐसा ही है). जर्मनी में भी बलात्कार के नियम 1997 में ही बदले गए ताकि ऐसे बलात्कार को अपराध की श्रेणी में रखा जा सके.

क्या पुरुष और स्त्री में विभाजन काल्पनिक है, जैसे भारत की जाति व्यवस्था और अमरीका का नस्ल-भेद, या यह एक प्राकृतिक विभाजन है जिसकी जड़ें हमारी शारीरिक संरचना में हैं? और अगर यह वाकई में एक प्राकृतिक विभाजन है, तो क्या पुरुषों के स्त्रियों से श्रेष्ठ होने के जैविक स्पष्टीकरण भी हैं?

स्त्रियों और पुरुषों के बीच स्थापित कुछ सांस्कृतिक, न्यायिक और राजनैतिक असमानताएं उन दोनों के बीच शारीरिक भिन्नता को दर्शाते हैं. बच्चे पैदा करना हमेशा स्त्रियों का काम रहा है क्योंकि पुरुषों के पास गर्भ नहीं होता. मगर इस कटु सत्य के ऊपर हर समाज ने सांस्कृतिक विचारों की कई परतें जमा कर लीं जिनका शारीरिक संरचना से कोई लेना-देना नहीं है. समाज पुरुषत्व और स्त्रीत्व पर कई गुण थोपता है जिनमें से अधिकतर का कोई जैविक आधार नहीं होता है.

उदाहरण के तौर पर, पांचवीं शताब्दी के लोकतांत्रिक एथेंस (यूनान) में, स्त्रियों की कोई स्वंतत्र कानूनी पहचान नहीं थी और उन्हें सामाजिक सभाओं में भाग लेना या न्यायाधीश बनने पर पाबंदी थी. कुछ अपवादों को छोड़कर, स्त्रियों को अच्छी शिक्षा नहीं मिल सकती थी, न ही वे रोजगार कर सकती थीं और न ही दार्शनिक चर्चाओं का हिस्सा बन सकती थीं. एथेंस की कोई भी राजनेता, महान दार्शनिक, वक्ता, कलाकार या व्यापारी स्त्री नहीं थी. क्या गर्भ होना एक इंसान को जैविक रूप से इन कार्यों को करने में असमर्थ बना देता है? प्राचीन यूनानी ऐसा ही सोचते थे. आधुनिक यूनानी इससे असहमत हैं. आज एथेंस में स्त्रियाँ वोट डाल सकती हैं, सार्वजनिक कार्यभार लेती हैं, भाषण देती हैं, जेवर और इमारतों से लेकर सॉफ्टवेर तक बनाती हैं, और विश्विद्यालयों में जाती हैं. उनका गर्भ उन्हें यह सब कार्य पुरुषों के जितना ही सफलता से करने से नहीं रोकता. यह सच है कि स्त्रियाँ आज भी राजनीति और व्यापार में कम हैं- यूनान की संसद की केवल 12% सदस्य ही स्त्री हैं. मगर स्त्रियों के राजनीति में भाग लेने पर कोई कानूनी रोक नहीं है, और ज्यादातर आधुनिक यूनानी सोचते हैं कि किसी स्त्री के लिए ऐसा करना आम बात है.

बहुत से आधुनिक यूनानी यह भी सोचते हैं कि केवल स्त्री के प्रति आकर्षित होना और केवल स्त्री के साथ शारीरिक सम्बन्ध बनाना पुरुष होने का अहम् हिस्सा है. वे इसे एक सांस्कृतिक धारण नहीं बल्कि एक जैविक वास्तविकता मानते हैं- विपरीत लिंग के इंसानों के बीच सम्बन्ध प्राकृतिक हैं, और समलैंगिक सम्बन्ध अप्राकृतिक हैं. सच तो यह है कि प्रकृति माँ को कोई आपत्ति नहीं होती अगर पुरुष एक दूसरे के प्रति आकर्षित हों. केवल किसी ख़ास संस्कृति की

विचारधारा में पली-बढ़ी मनुष्य माँ ही होती है जो तूफ़ान खड़ा कर देती है अगर उसका बेटा पड़ोस के लड़के के साथ सम्बन्ध बनाए. उस माँ की आपत्ति की कोई जैविक मजबूरी नहीं है. कई संस्कृतियों में समलैंगिक सम्बन्ध न केवल वैध हैं बल्कि उन्हें सामाजिक रूप से अच्छा भी माना जाता है, प्राचीन यूनान इसका सबसे अच्छा उदाहरण है. मैसिडोन की रानी ओलम्पिआस प्राचीन दुनिया की एक गुस्सैल और शक्तिशाली महिला थी, और जिसने अपने पति राजा फिलिप को भी मरवा डाला था. पर उसे कोई दिक्कत नहीं हुई जब उसका बेटा, सिकंदर महान, अपने पुरुष प्रेमी हेफैश्चियन को भोजन पर घर लाया.

हम यह कैसे निर्धारित करें कि क्या प्राकृतिक रूप से निर्धारित है और किसे लोग केवल मिथ्या प्राकृतिक नियमों के जरिए सही ठहराते हैं? इसके लिए एक अच्छा नियम है "प्रकृति संभव करती है, संस्कृति मना करती है". प्रकृति बहुत सारी संभावनाओं को बर्दाश्त करने को तैयार रहती है. वह संस्कृति है जो लोगों को कुछ संभावनाएं साकार करने देती है और बाकी को साकार करने से रोकती है. प्रकृति स्त्रियों को बच्चे पैदा करने का सामर्थ्य देती है- कुछ संस्कृतियां हैं जो उन्हें बच्चा पैदा करने को बाध्य करती हैं. प्रकृति पुरुषों को आपस में शारीरिक सम्बन्ध बनाने की संभावना देती है- कुछ संस्कृतियाँ उन्हें इस संभावना को पूरा करने से रोकती हैं.

संस्कृति यह कहती है कि वह केवल वे चीजें मना करती है जो अप्राकृतिक हैं. मगर जीव विज्ञान की नजर से तो कुछ भी अप्राकृतिक नहीं है. जो कुछ भी प्रकृति में संभव है, वह प्राकृतिक है. वास्तविक रूप से अगर कोई व्यवहार अप्राकृतिक है, यानी वह प्रकृति के नियमों के खिलाफ है, तो उसका अस्तित्व ही नहीं हो सकता, इसलिए उसे निषेध करने की जरुरत ही नहीं पड़ेगी. किसी भी संस्कृति ने पुरुषों को पेड़-पौधों की तरह प्रकाश संश्लेषण क्रिया से भोजन बनाने से नहीं रोका, या स्त्रियों को प्रकाश की गति से भी तेज दौड़ने से, या ऋणात्मक इलैक्ट्रोनों को एक दूसरे के प्रति आकर्षित होने से क्योंकि ये चीजें प्रकृति में संभव ही नहीं हैं.

सच्चाई यह है कि 'प्राकृतिक' और 'अप्राकृतिक' के हमारे विचार जीव विज्ञान से नहीं बल्कि ईसाई धर्मशास्त्र से उपजे हैं. धर्मशास्त्र में 'प्राकृतिक' का अर्थ होता है 'ईश्वर की इच्छाओं के अनुसार, जिसने प्रकृति को बनाया है'. ईसाई धर्मशास्त्रीयों ने तर्क दिया कि ईश्वर ने मनुष्य का शरीर बनाया और हर अंग का एक उद्देश्य रखा. अगर हम ईश्वर के सोचे हुए उद्देश्य के अनुसार अपने अंगों का इस्तेमाल करें तो वह प्राकृतिक व्यवहार होगा. ईश्वर की इच्छाओं के विरुद्ध उनको इस्तेमाल करना अप्राकृतिक है. मगर जीवों के क्रमिक विकास का कोई उद्देश्य नहीं होता. अंग किसी उद्देश्य के तहत नहीं बने हैं, और उनका इस्तेमाल निरंतर बदलता रहता है. मनुष्य के शरीर में एक भी ऐसा अंग नहीं है जो केवल वही काम करता है जो उसका मूलरूप लाखों साल पहले करता था. अंग एक ख़ास कार्य करने के लिए बने, मगर एक बार वो अस्तित्व में आ जाएं, तो उनका अन्य कार्यों के लिए भी उपयोग किया जा सकता है. उदाहरण के तौर पर, मुंह इसलिए विकसित हुए ताकि प्राचीनतम बहुकोशिकीय जीवों को पोषक तत्वों को अपने शरीर के अन्दर लेना का एक जरिया चाहिए था. मगर हम मुंह को चूमने, बोलने और रैम्बो की तरह ग्रेनेड की पिन निकालने के लिए भी इस्तेमाल करते हैं. क्या इनमें से कोई भी गतिविधि अप्राकृतिक है क्योंकि 60 करोड़ साल पहले हमारे कीड़ों जैसे पूर्वज अपने मुंह से ये काम नहीं करते थे?

इसी तरह पंख अचानक से अपनी पूरी महिमा के साथ नहीं प्रकट हुए थे. वे उन अंगों से विकसित हुए जिनका काम कुछ और था. एक मत के अनुसार, लाखों साल पहले न उड़ सकने वाले कीड़ों के शरीर के उभरे हुए हिस्सों से पंख विकसित हुए. जिन कीड़ों के शरीर पर उभरे हुए हिस्से थे उनके शरीर का क्षेत्रफल अन्य कीड़ों से ज्यादा था, और इसलिए वे सूरज की ज्यादा रोशनी सोखकर ज्यादा गर्म रह पाते थे. धीमे क्रमिक विकास में उनके शरीर की ये सौर पटरियां बड़ी होती रहीं. वे भाग जो ज्यादा रोशनी सोखने के लिए अनुकूल थे- ज्यादा क्षेत्रफल, कम भार- संयोग से उन कीड़ों को उछलते वक्त ज्यादा उछाल भी देते थे. जिनके शरीर के उभार ज्यादा बड़े थे वे ज्यादा दूर तक उछल सकते थे. कुछ कीड़ों ने इन्हें हवा में कुछ दूरी तक तैरने के लिए इस्तेमाल करना शुरू कर दिया, और वहां से पंख विकसित होने में थोड़ा ही समय लगा जिससे कीड़े हवा में उड़ने लगे. तो अगली बार अगर कोई मच्छर आपके कान में भिनभिनाए, तो आप उसपर अप्राकृतिक गतिविधि का इल्जाम लगाइएगा. अगर वह मच्छर अच्छा बर्ताव करती और ईश्वर की दी हुई चीजों से संतुष्ट रहती, तो वह अपने पंख केवल सूरज की रोशनी सोखने के लिए इस्तेमाल करती.

इसी तरह एक से ज्यादा कार्यों में उपयोग लाना हमारे प्रजनन अंगों और यौन व्यवहार के लिए भी लागू होता है. सम्भोग शुरुआत में संतान पैदा करने के लिए विकसित हुआ और रिझाने के तरीके अपने संभावित साथी की योग्यता टटोलने के लिए. मगर बहुत से जानवर इन दोनों को कई सामाजिक कार्यों के लिए भी उपयोग में लाते हैं बजाय कि केवल संतान उत्पत्ति के लिए. जैसे चिम्पांजी सम्भोग को अपने राजनैतिक सम्बन्ध मजबूत करने, आत्मीयता बनाने और तनाव दूर करने के लिए इस्तेमाल करते हैं. क्या यह अप्राकृतिक है?

इसलिए इसमें कोई तर्क नहीं है कि स्त्रियों का प्राकृतिक कार्य बच्चों को पैदा करना है, या समलैंगिकता अप्राकृतिक है. ज्यादातर कानून, नियम, अधिकार और दायित्व जो पुरुषत्व और स्त्रीत्व को परिभाषित करते हैं सिर्फ हमारी मानवीय कल्पना के परिणाम हैं नाकि कि जैविक वास्तविकता के.

जैविक रूप से मनुष्य नर और मादा में विभाजित है. मनुष्यों में नर वह है जिसकी कोशिकाओं में एक X गुणसूत्र और एक Y गुणसूत्र है; मनुष्यों में मादा वह है जिसकी कोशिकाओं में दो X गुणसूत्र हैं. मगर 'पुरुष' और 'स्त्री' सामाजिक श्रेणियां हैं, जैविक नहीं. ज्यादातर मानवीय समाजों में पुरुष नर होते हैं और स्त्री मादा, मगर पुरुष और स्त्री की सामाजिक श्रेणियां अपने ऊपर बहुत सारा बोझ लिए हुए होती हैं जिनका जैविक श्रेणियों से न के बराबर लेना-देना होता है. एक पुरुष वह मनुष्य नहीं है जिसके पास XY गुणसूत्र, अंडकोष और खूब सारा टेस्टोस्टेरोन हॉर्मोन है. बल्कि वह समाज द्वारा मनुष्यों के लिए रचे हुए काल्पनिक क्रम में एक ख़ास खांचे में ढला होता है. उसकी संस्कृति की कल्पनाएँ उसे कुछ ख़ास मर्दाना भूमिकाएं (जैसे राजनीती में हिस्सा लेना), अधिकार (जैसे वोट डालना), और जिम्मेदारियां (जैसे फ़ौज में सेवा देना) देती हैं. इसी तरह एक स्त्री वह मनुष्य नहीं है जिसके पास दो X गुणसूत्र, एक गर्भ और खूब सारा एस्ट्रोजन हॉर्मोन है. बल्कि वह भी मनुष्यों के एक काल्पनिक क्रम की सदस्य है. उसके समाज की कल्पनाएँ उसे ख़ास जनाना भूमिकाएं (जैसे बच्चे पालना), अधिकार (हिंसा के खिलाफ सुरक्षा), और जिम्मेदारियां (पति की आज्ञा मानना) देती हैं. क्योंकि कल्पनाएँ, नाकि जीव विज्ञान, इन भूमिकाओं, अधिकारों और जिम्मेदारियों को

निर्धारित करती हैं, इसलिए 'पुरुषत्व' और 'स्त्रीत्व' के खांचे एक समाज से दूसरे समाज के बीच बहुत अलग-अलग होते हैं.

चीजों को सरल बनाने के लिए समाजशास्त्री अक्सर शारीरिक लिंग यांनी 'सेक्स' और सामाजिक/ सांस्कृतिक लिंग यानी 'जेंडर' में अंतर करते हैं. शारीरिक लिंग नर और मादा में विभाजित होता है, और इस विभाजन के गुण निष्पक्ष हैं और पूरे इतिहास में एक जैसे रहे हैं. सामाजिक लिंग पुरुष और स्त्री में विभाजित होता है (कुछ संस्कृतियों में अन्य सामाजिक लिंग भी स्वीकार किए जाते हैं). 'पुरुषत्व' और 'स्त्रीत्व' के गुण लोगों के मन द्वारा गढ़े होते हैं और लगातार बदलते रहते हैं. जैसे, प्राचीन और आधुनिक एथेंस में स्त्रियों के व्यवहार, वेशभूषा और चलने के ढंग को लेकर की जाने वाली अपेक्षाएं बहुत ही अलग हैं.

मादा = शारीरिक श्रेणी		**स्त्री = सांस्कृतिक श्रेणी**	
प्राचीन एथेंस	**आधुनिक एथेंस**	**प्राचीन एथेंस**	**आधुनिक एथेंस**
XX गुणसूत्र	XX गुणसूत्र	वोट नहीं डाल सकती	वोट डाल सकती है
गर्भ	गर्भ	न्यायाधीश नहीं बन सकती	न्यायाधीश बन सकती है
अंडाशय	अंडाशय	सरकारी पद नहीं ले सकती	सरकारी पद ले सकती है
थोड़ा टेस्टोस्टेरोन हॉर्मोन	थोड़ा टेस्टोस्टेरोन हॉर्मोन	शादी का निर्णय खुद नहीं ले सकती	शादी का निर्णय खुद ले सकती है
ज्यादा एस्ट्रोजन हॉर्मोन	ज्यादा एस्ट्रोजन हॉर्मोन	अक्सर अनपढ़	अक्सर साक्षर
दूध बना सकती है	दूध बना सकती है	कानूनी रूप से पिता या पति की संपत्ति	कानूनी रूप से स्वतंत्र
बिल्कुल एक समान		**एकदम भिन्न**	

शारीरिक लिंग बाएँ हाथ का खेल है; पर सामाजिक लिंग बहुत ही गंभीर प्रश्न है. नर श्रेणी का सदस्य बनना आसान है. तुम्हें बस X और Y गुणसूत्र के साथ पैदा होना है. मादा होना ही भी इतना ही सरल है. X गुणसूत्र का जोड़ा काफी है. मगर पुरुष या स्त्री बनना बहुत ही जटिल और कठिन काम है. क्योंकि पुरुषत्व और स्त्रीत्व के ज्यादातर गुण सांस्कृतिक हैं, जैविक नहीं, इसलिए कोई भी समाज हर नर को पुरुष और हर मादा को स्त्री ऐसे ही नहीं मान लेता है. न ही पुरुष और स्त्री की उपाधि एक बार हासिल करने के बाद हमेशा के लिए बनी रहती है. नर को लगातार, पूरे जीवन भर, अपना पुरुषत्व साबित करना होता है, जन्म से मृत्यु तक, अनगिनत रस्मों और कार्यों के जरिए. और एक स्त्री का काम तो कभी पूरा नहीं होता है- उसे लगातार खुद को और दूसरों को साबित करना होता है कि उसमें काफी स्त्रीत्व है.

इसमें सफलता निश्चित नहीं है. खासतौर से नर इस खौफ में रहते हैं कि उनकी मर्दानगी का दावा ख़त्म हो जाएगा. पूरे इतिहास में नर अपना जीवन जोखिम में डालने और यहाँ तक की कुर्बान होने के लिए भी तैयार रहे हैं, सिर्फ इसलिए कि लोग कहें 'वह असली मर्द है!'

कम-से कम कृषि क्रांति के समय से ज्यादातर मनुष्य समाज पितृसत्तात्मक रहे हैं जिनमें पुरुषों का ओहदा स्त्रियों से ऊंचा रहा है. किसी समाज ने 'पुरुष' और 'स्त्री' को कैसे भी परिभाषित किया हो, पुरुष होना हमेशा फायदेमंद रहा है. पितृसत्तात्मक समाज नरों को मर्दाने तरीके से और मादाओं को जनाना तरीके से सोचना और व्यवहार करना सिखाते हैं, और जो भी इन सीमाओं को तोड़े उसे सजा दी जाती है. इसके बावजूद, जो नियमों का पालन करते हैं, उन्हें समान रूप से ईनाम नहीं मिलता. मर्दाना गुण जनाना गुणों से हमेशा श्रेष्ठ माने जाते रहे हैं, और समाज के जो सदस्य स्त्रीत्व को अच्छे से जीते हैं उन्हें पुरुषत्व के अनुसार जीने वालों से हमेशा कम मिलता है. स्त्रियों के स्वास्थ्य और शिक्षा में कम संसाधन खर्च किए जाते हैं; उन्हें कम आर्थिक अवसर मिलते हैं, और बाहर निकलने की कम आजादी. सामजिक लिंग एक ऐसी दौड़ है जिसमें कुछ सदस्य केवल कांस्य पदक के लिए मुकाबला करते हैं.

यह सच है कि कुछ मुट्ठीभर स्त्रियों ने सर्वोच्च पद हासिल किया है, जैसे मिस्र की महारानी क्लियोपैट्रा, चीन की शहंशाह वू जेटियन (700 ईसवी) और इंगलैंड की महारानी एलिजाबेथ प्रथम. मगर ये वो अपवाद हैं जो स्त्रियों की कमतर हालत को सिद्ध करते हैं. एलिजाबेथ प्रथम के राज के पैंतालीस सालों में संसद के सारे सदस्य पुरुष थे, जल सेना और थल सेना के सारे अफसर पुरुष थे, सारे न्यायाधीश और वकील पुरुष थे, गिरजाघर के सारे पादरी पुरुष थे, सारे धर्मशास्त्री और पुजारी पुरुष थे, सारे डॉक्टर और सर्जन पुरुष थे, सारे छात्र और अध्यापक पुरुष थे, सारे मेयर और पुलिस अधिकारी पुरुष थे, और लगभग सारे लेखक, कवि, दार्शनिक, चित्रकार, संगीतकार और वैज्ञानिक पुरुष थे.

सभी कृषक और औद्योगिक समाजों में पितृसत्ता ही रही है. राजनैतिक आन्दोलनों, सामजिक क्रांतियों, और आर्थिक बदलावों के बावजूद यह मजबूती से जड़ जमाए हुए है. उदाहरण के तौर पर, सदियों से मिस्र पर विभिन्न सत्ताओं ने राज किया है. अश्शूरी, फ़ारसी, मकदूनियाई, रोमन, अरबी, मामेलुकी, तुर्क और अंग्रेजी साम्राज्यों ने मिस्र पर राज

किया- और मिस्र का समाज हमेशा पितृसत्तात्मक रहा. मिस्र में फिरौनी, यूनानी, रोमन, इस्लामी, तुर्क और अंग्रेजी कानूनों के तहत राज किया गया- और उन सबने जो 'असली मर्द' नहीं थे उनके खिलाफ भेद-भाव किया है.

क्योंकि पितृसत्ता इतनी सर्वव्यापी है, इसलिए यह संभव नहीं कि यह किसी खतरनाक चक्र का परिणाम है जो कभी संयोग से चल पड़ा. यह ध्यान देने वाली बात है कि 1492 से भी पहले अमरीका, अफ्रीका और एशिया के समाज पितृसत्तात्मक थे, भले ही इससे पहले वे हजारों सालों से एक दूसरे से कटे हुए थे. अगर अफ्रीका और एशिया में पितृसत्ता किसी संयोग से उपजी, तो अमरीका के एज़्टेक और इन्का समाज भी पितृसत्तात्मक क्यों थे? यह कहीं ज्यादा संभव है कि भले ही 'पुरुष' और 'स्त्री' की परिभाषा हर संस्कृति में भिन्न है, कोई सर्वव्यापी जैविक कारण है जिससे सारी संस्कृतियों में पुरुषत्व को स्त्रीत्व से बेहतर माना गया है. हमें नहीं पता यह कारण क्या है. इसके बारे में बहुत सारे मत हैं, मगर कोई भी विश्वसनीय नहीं है.

'ज्यादा शारीरिक शक्ति'

सबसे आम मत इस तथ्य को बताता है कि शारीरिक रूप से पुरुष स्त्रियों से ज्यादा शक्तिशाली होते हैं, और उन्होंने यह शक्ति स्त्रियों को दबाने में इस्तेमाल की है. इस मत का एक और स्वरुप कहता है कि ज्यादा शारीरिक शक्ति के कारण पुरुष उन कार्यों को हथिया लेते हैं जिनमें ज्यादा श्रम लगता है, जैसे हल जोतना और फसल काटना. इससे वे भोजन के उत्पादन के मालिक बन जाते हैं, जिससे उन्हें राजनैतिक शक्ति मिल जाती है.

शारीरिक शक्ति पर केन्द्रित होने के साथ दो दिक्कतें हैं. पहली, यह कथन कि 'पुरुष स्त्रियों से ज्यादा शक्तिशाली होते हैं' केवल औसतन रूप से सच है, और वह भी कुछ ही तरह की शक्तियों के लिए. स्त्रियाँ आमतौर पर भूख, बीमारी और थकान के प्रति पुरुषों से ज्यादा सहनशील होती हैं. ऐसी कई महिलाएं हैं जो कई पुरुषों से ज्यादा तेज दौड़ सकती हैं और उनसे ज्यादा भार उठा सकती हैं. इस मत का सबसे कमजोर पहलु यह है कि इतिहास में हमेशा स्त्रियों को ऐसे पेशों से दूर रखा गया जिनमें बहुत कम शारीरिक श्रम लगता है (जैसे पुरोहिताई, कानून, राजनीति), जबकि उन्हें खेतों में, कारीगरी में और घर के अन्दर कठिन श्रम वाले कार्यों में लगाया गया. अगर सामाजिक शक्ति का शारीरिक शक्ति या सहनशीलता से सीधा सम्बन्ध होता तो स्त्रियों को कहीं ज्यादा सामाजिक शक्ति मिलनी चाहिए थी.

इससे भी महत्त्वपूर्ण यह है कि मनुष्यों में शारीरिक शक्ति और सामाजिक शक्ति में कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है. साठ के उम्र के बुजुर्गों का अक्सर 20 वर्ष के जवानों पर दबदबा रहता है भले ही वे बूढ़ों से ज्यादा शक्तिशाली हों. उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में जब अमरीका में गुलाम प्रथा थी, तो अलाबामा राज्य के किसी बागान के श्वेत मालिक को उसके कपास के खेतों में काम रहा कोई भी अफ्रीकी गुलाम कुश्ती में कुछ ही सेकंड के भीतर पटक सकता था. मिस्र के फिरौन या ईसाईयों के पोप को चुनने के लिए घूंसेबाजी के मुकाबले नहीं होते थे. आदिमानव के समय में राजनैतिक शक्ति अक्सर उस व्यक्ति के पास होती थी जो सामाजिक रूप से ज्यादा कुशल था, नाकि सबसे तगड़े व्यक्ति के पास. आपराधिक संगठनों में गुंडों का सरगना शारीरिक रूप से सबसे मजबूत नहीं होता है. वह अक्सर एक बुजुर्ग आदमी होता है जो शायद ही घूँसा भी चलाता हो; वह जवान और जोशीले पुरुषों को को गंदे काम करने के लिए किराए पर

रखता है. कोई व्यक्ति अगर सोचता है कि डॉन को पीट देने से वह सरगना बन जाएगा तो वह अपनी गलती से सीखने के लिए जिन्दा नहीं बचेगा. चिम्पान्जियों में भी झुण्ड का नेता दूसरे नरों और मादाओं के साथ स्थिर सम्बन्ध बनाकर ही राजनैतिक शक्ति हासिल करता है, नाकि की सबको मार-पीटकर.

बल्कि मनुष्यों का इतिहास तो यह दिखाता है कि अक्सर शारीरिक शक्ति और सामाजिक शक्ति में उल्टा सम्बन्ध होता है. ज्यादातर समाजों में निम्न वर्ग के लोग शारीरिक श्रम के पेशों में होते हैं. यह शायद हम होमो सेपिएन्स (मनुष्यों का वैज्ञानिक नाम) की खाद्य शृंखला में जगह भी बताता है. अगर केवल शारीरिक क्षमता ही मायने रखती, तो इंसान खाद्य शृंखला के कहीं बीच में होते. मगर उनकी मानसिक और सामाजिक कुशलताओं ने उन्हें खाद्य शृंखला के शीर्ष पर पहुंचा दिया है. इसलिए यही प्राकृतिक है कि मनुष्य प्रजाति के भीतर भी सत्ता की सीढ़ी मानसिक और सामाजिक कुशलताओं के बल पर ही निर्धारित होगी नाकि शारीरिक शक्ति के. इसलिए यह भरोसा कर पाना मुश्किल है कि इतिहास की सबसे शक्तिशाली और सबसे स्थिर सामाजिक संरचना पुरुषों द्वारा स्त्रियों के शारीरिक दमन पर टिकी हुई है.

'ज्यादा आक्रामकता'

एक और मत के अनुसार पुरुषों की सत्ता उनकी शारीरिक शक्ति से नहीं उनकी आक्रामकता के कारण है. लाखों सालों के जैविक विकास ने पुरुषों को स्त्रियों से ज्यादा हिंसक बनाया है. स्त्रियाँ नफरत, लालच और गाली देने में पुरुषों की बराबरी कर सकती हैं, मगर इस मत के अनुसार पुरुष शारीरिक हिंसा के लिए ज्यादा तैयार रहते हैं. इसीलिए इतिहास में युद्ध हमेशा पुरुषों का काम रहा है.

युद्ध के समय पुरुषों का सेना पर नियंत्रण उन्हें सामाजिक जीवन पर भी नियंत्रण दिलाता है. फिर वे समाज का इस्तेमाल और अधिक युद्ध लड़ने में करते हैं, और जितने अधिक युद्ध, पुरुषों का समाज पर नियंत्रण भी उतना ही अधिक होगा. इस चक्र से युद्ध और पितृसत्ता दोनों का सर्वव्यापी होना समझाया जा सकता है.

पुरुषों और स्त्रियों के हॉर्मोन और मस्तिष्क के हाल के वैज्ञानिक शोधों से यह धारणा और पुख्ता हुई है कि पुरुष वास्तव में स्त्रियों से ज्यादा आक्रामक और हिंसात्मक प्रवृत्ति रखते हैं, और इसलिए औसतन रूप से वे सैनिक बनने के लिए बेहतर हैं. मगर सारे आम सैनिक पुरुष भी हों तो भी क्या यह जरुरी है कि युद्ध का संचालन करने वाले और उसके परिणामों का फल पाने वाले भी पुरुष ही हों? यह समझ में नहीं आता. यह तो ऐसा मान लेना है कि क्योंकि कपास के खेतों में काम करने वाले सारे गुलाम अश्वेत अफ्रीकी हैं, तो बागान के मालिक भी अश्वेत ही होंगे. जैसे केवल अश्वेतों की मजदूर फ़ौज का नियंत्रण श्वेत अमरीकी कर सकते हैं, सिर्फ पुरुष सैनिकों की सेना का नियंत्रण पूर्ण रूप से स्त्रियाँ या स्त्रियों की सरकार क्यों नहीं कर सकती है? तथ्य तो यह है कि इतिहास में कई समाजों में उच्च पद के अफसर सैनिक के स्तर से ऊपर नहीं बढ़े थे. शक्तिशाली, अमीर और शिक्षित लोगों को एक दिन भी सैनिक बने बिना सीधे अफसर बना दिया जाता था.

जब वेलिंगटन का ड्यूक, जिसने नेपोलियन के शासन का अंत किया, 18 साल की उम्र में अंग्रेजी फ़ौज में भर्ती हुआ, तो वह सीधे अफसर के पद पर नियुक्त हुआ. वह अपने नीचे के आम सिपाहियों को कोई अहमियत नहीं देता था. फ्रांस के साथ युद्ध के दौरान उसने अपने एक रईस साथी को लिखा था, 'हमारी फ़ौज में दुनिया के सबसे घटिया लोग सैनिक हैं'. ये आम सैनिक अक्सर सबसे गरीब समुदायों या अल्पसंख्यकों (जैसे आयरलैंड के कैथोलिक) में से लिए जाते थे. उनके लिए सेना में ऊंचे पदों तक पहुँचना असंभव सा था. ऊंचे पद ड्यूक, राजकुमारों और राजाओं के लिए आरक्षित थे. मगर ड्यूक के लिए ही क्यों, उसकी पत्नी के लिए क्यों नहीं?

अफ्रीका के फ्रांसीसी साम्राज्य को सेनेगल, अल्जीरिया और फ्रांसीसी मजदूरों ने अपने खून और पसीने से स्थापित और सुरक्षित किया था. सैनिकों की श्रेणी में उच्च वर्ग के फ्रांसीसी न के बराबर थे. मगर फ्रांसीसी सेना की छोटी सी अफसरशाही में, जो पूरी सेना का नेतृत्व करती थी, फ्रांस के उच्च वर्ग के पुरुष भरे पड़े थे. केवल फ्रांसीसी पुरुष ही क्यों, फ्रांसीसी स्त्रियाँ क्यों नहीं?

चीन में सेना को नागरिक नौकरशाही के नीचे दबाने का लम्बा रिवाज था. इसलिए प्रशासनिक अधिकारी, जिन्होंने कभी तलवार भी नहीं पकड़ी थी, युद्ध संचालित करते थे. एक चीनी मुहावरा था 'अच्छा लोहा कीलें बनाने में बर्बाद नहीं किया जाता', यानी प्रतिभाशाली लोग नौकरशाही में जाते हैं, सेना में नहीं. तो फिर सारे चीनी प्रशासनिक अधिकारी पुरुष ही क्यों थे?

यह बेतुकी बात होगी कि शारीरिक कमजोरी या टेस्टोस्टेरोन की कमी ने स्त्रियों को सफल प्रशासनिक अधिकारी, सेनापति या राजनेता बनने से रोका. एक युद्ध चलाने के लिए निश्चित रूप से अंदरूनी शक्ति चाहिए होती है, मगर ज्यादा शारीरिक शक्ति या आक्रामकता नहीं. युद्ध सड़क की लड़ाईयों की तरह नहीं होते. वे बहुत ही जटिल अभियान होते हैं जिनमें असाधारण संगठन, सहयोग और सुलह करने पड़ते हैं. जीत के लिए बहुत जरुरी होता है अपने घर में शांति बनाए रखना, विदेश में सहयोगी बनाना, और यह समझना कि दूसरे के मन में क्या चल रहा है (खासतौर से शत्रु के मन में). इसलिए अक्सर एक हिंसक और आक्रामक व्यक्ति युद्ध का संचालन करने के लिए सबसे खराब विकल्प होता है. उससे कहीं बेहतर होता है एक सहयोगी इंसान जो समझौते करना जानता है, समझदारी से हेर-फेर कर सकता है और चीजों को अलग-अलग नजरियों से देख सकता है. इसी से साम्राज्य खड़े होते हैं. सैन्य रूप से अकुशल ऑगस्टस एक स्थिर राज्य स्थापित कर पाया, जोकि जूलियस सीज़र और सिकंदर महान भी नहीं कर पाए, भले ही वे उससे बेहतर सेनापति थे. उसके समय के लोगों ने और आधुनिक इतिहासकारों ने यह उपलब्धि उसके गुणों को दी है- नरमी बरतना और समझौते करना.

स्त्रियों के बारे में रूढ़ी है कि वे लोगों के साथ निबटने में और समझौते करने में पुरुषों से बेहतर होती हैं, और चीजों को दूसरों के नजरिये से देखने में भी. अगर इन मान्यताओं में कुछ सच छिपा है, तो स्त्रियाँ को श्रेष्ठ राजनेता और शहंशाह बनना चाहिए था, और युद्ध के मैदान में मरने-मारने का काम टेस्टोस्टेरोन से भरे आक्रामक पुरुष करते. इन मान्यताओं के बावजूद, असल में ऐसा बहुत ही कम हुआ है. यह साफ़ नहीं है क्यों.

‘कोशिकाओं के पितृसत्तात्मक जीन’

** जीन हमारी कोशिकाओं के अन्दर डीएनए में आनुवंशिकता की इकाई होते हैं, जो एक पीढ़ी के अलग-अलग गुण दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाते हैं और इन गुणों को पीढ़ी-दर-पीढ़ी कायम रखते हैं.*

तीसरे तरह का जैविक स्पष्टीकरण शारीरिक शक्ति और आक्रामकता को कम महत्त्व देता है, और कहता है कि लाखों वर्षों के क्रमिक जैविक विकास में, पुरुषों और स्त्रियों ने जीवित रहने और प्रजनन करने की अलग-अलग रणनीतियां विकसित करी.

क्योंकि पुरुष स्त्री को गर्भवती करने के लिए एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करते थे, किसी भी पुरुष के प्रजनन किए जाने की सम्भावना सबसे ज्यादा इस बात पर निर्भर थी कि वह दूसरे पुरुषों को हरा सकता है या नहीं. समय के साथ केवल वही जीन अगली पीढ़ी के पुरुषों में पहुंचे जो सबसे ज्यादा महत्त्वाकांक्षी, आक्रामक और प्रतिस्पर्धी पुरुषों के थे.

दूसरी ओर, एक स्त्री को पुरुष साथी ढूँढने में कोई दिक्कत नहीं होती थी जो उसे गर्भवती कर सके. पर अगर उसे यह सुनिश्चित करना था कि उसके बच्चे जीवित रहकर अपनी पीढ़ी आगे बढ़ाएं, तो उसे उन्हें अपने गर्भ में नौ कठिन महीनों तक संभालना होता था, और फिर कई सालों तक उनकी परवरिश करनी होती थी. इस पूरे समय में उसके पास खाना ढूँढने के कम अवसर होते थे और उसे काफी मदद चाहिए होती थी. इसलिए उसे एक पुरुष की जरुरत पड़ती थी. अपने और अपने बच्चों के जीवित बचे रहने के लिए उस स्त्री के पास केवल एक विकल्प था कि वह पुरुष द्वारा रखी गई हर शर्त को माने ताकि वह उसके पास रहकर उसका बोझ बांटे. समय के साथ केवल वही जीन अगली पीढ़ी की स्त्रियों में पहुंचे जो सबसे ज्यादा दबने वाली स्त्रियों के थे. वह स्त्रियाँ जो सत्ता के लिए बहुत ज्यादा झगड़ती थीं, उन्हें पुरुष साथी नहीं मिलता था और समय के साथ उनके शक्तिशाली जीन अगली पीढ़ियों में नहीं पहुंचे.

इस मत के अनुसार, जीवित रहने की इन अलग-अलग रणनीतियों के कारण पुरुष जैविक रूप से महत्त्वाकांक्षी और प्रतिस्पर्धी बन चुके हैं, जिससे वे व्यापार और राजनीति में सफल होते हैं, जबकि स्त्रियों का झुकाव जैविक रूप से पुरुषों के रास्ते से हटने और अपना जीवन बच्चों की परवरिश में लगाने की ओर हुआ है.

मगर यह मत भी अनुभव से उपजे सबूतों के कारण गलत साबित होता दिखता है. इस मत का सबसे समस्या वाला पहलु यह है कि एक स्त्री की बाहरी मदद पर निर्भरता ने उसे एक पुरुष पर निर्भर बना दिया बजाय कि साथ की अन्य स्त्रियों पर, और यह कि पुरुषों की प्रतिस्पर्धा ने उन्हें स्त्रियों पर ज्यादा हावी बना दिया. जानवरों की बहुत सारी प्रजातियाँ हैं, जैसे हाथी और बोनोबो चिम्पांजी, जहाँ निर्भर मादाओं और प्रतिस्पर्धी नरों के परिणाम स्वरुप एक मातृ-प्रधान समाज बनता है. क्योंकि मादाओं को दूसरों की मदद चाहिए होती है, इसलिए उन्हें सामाजिक कौशल, सहयोग और समझौते करना सीखना पड़ता है. वे मादाओं का एक सामाजिक संगठन बना लेती हैं जहाँ हर मादा दूसरे मादा की संतान की परवरिश करने में मदद करती है. दूसरी ओर, नर अपना समय लड़ने और प्रतिस्पर्धा करने में लगाते हैं. उनका सामजिक कौशल और आपसी सम्बन्ध ज्यादा विकसित नहीं हो पाते. बोनोबो और हाथियों का समाज सहयोगी मादाओं के शक्तिशाली संगठन द्वारा नियंत्रित होता है, जबकि आत्म-केन्द्रित और असहयोगी नर इस समाज के किनारे

पर धकेल दिए जाते हैं. भले ही बोनोबो मादा चिम्पांजी नरों से औसतन कमजोर होती हैं, पर अक्सर मादाएं एक साथ मिलकर सीमाएं तोड़ने वाले नरों को पीट देती हैं.

अगर यह बोनोबो और हाथियों में संभव है तो मनुष्यों में क्यों नहीं? होमो सेपिएन्स दूसरों के मुकाबले कमजोर जानवर हैं जिनकी ताकत बड़ी संख्या में आपसी सहयोग करने पर निर्भर है. अगर ऐसा है, तो यह होना चाहिए कि निर्भर स्त्रियाँ, भले ही वे पुरुषों पर ही क्यों न निर्भर हों, अपने बेहतर सामाजिक कौशल से आपस में सहयोग करेंगी और ज्यादा आक्रामक, अकेले और आत्म-केन्द्रित पुरुषों को हरा देंगी.

ऐसा कैसे हो गया कि एक ऐसी प्रजाति में, जिसकी सफलता सबसे ज्यादा आपसी सहयोग पर निर्भर करती है, वे सदस्य (पुरुष) जो शायद कम सहयोगी हैं उन सदस्यों को नियंत्रित करते हैं जो ज्यादा सहयोगी हैं (स्त्री)? वर्तमान में हमारे पास कोई अच्छा उत्तर नहीं है. शायद हमारी धारणाएं ही गलत हैं. शायद होमो सेपिएन्स के नरों का मुख्य गुण शारीरिक शक्ति, आक्रामकता या प्रतिस्पर्धा नहीं बल्कि मादाओं से बेहतर सामाजिक कौशल और सहयोग के प्रति झुकाव है. हमें नहीं पता.

जो हमें पता है वह यह है कि पिछली एक सदी में स्त्रियों और पुरुषों की सामाजिक भूमिकाओं में गजब की क्रांति आई है. आज कई समाज न केवल पुरुषों और स्त्रियों को समान कानूनी, राजनैतिक और आर्थिक अधिकार व अवसर दे रहे हैं, बल्कि सामाजिक लिंग और लैंगिकता की अपनी मूलभूत धारणाओं पर पुनर्विचार भी कर रहे हैं. भले ही स्त्रियों और पुरुषों में अभी भी बहुत फर्क है, मगर बदलाव बहुत तेजी से हो रहे हैं. बीसवीं सदी की शुरुआत में, अमरीका में स्त्रियों को वोट डालने का अधिकार देना या किसी स्त्री का मंत्रिमंडल सचिव या सर्वोच्च न्यायलय का न्यायाधीश बनना बेतुकी चीजें मानी जाती थीं; जबकि समलैंगिकता के बारे में तो खुलकर बात भी नहीं कर सकते थे. इक्कीसवीं सदी की शुरुआत में स्त्रियों का मताधिकार आम बात है; किसी महिला के मंत्रिमंडल सचिव बनने पर कोई प्रश्न नहीं उठता; और 2013 में अमरीका के सर्वोच्च न्यायलय के पांच न्यायाधीशों ने, जिनमें से तीन महिलाएं थीं, (चार पुरुष न्यायाधीशों के मत को रद्द करते हुए) समलैंगिक विवाह को कानूनी स्वीकृति दी.

ये बड़े बदलाव ही लिंगभेद के इतिहास को इतना उलझन भरा बनाते हैं. अगर, जैसा हमने देखा, पितृसत्तात्मक समाज गलत काल्पनिक धारणाओं पर खड़ा हुआ है बजाय कि जैविक तथ्यों के, तो इस सामाजिक ढांचे के इतने सर्वव्यापी और स्थिर होने का कारण क्या है?